ISSN -2393-8048, July-December 2021, Submitted in October 2021, iajesm2014@gmail.com

गुप्तकाल में मूर्ति निर्माण कला तथा अलंकरणों का स्वरूप

Sarita, Research Scholar SunRise University, Alwar
Dr. Rajeev Kumar Jain, Professor, Dept. of History, SunRise University, Alwar, Rajasthan, India,
Corresponding Author E-mail – gfinstitute1234@gmail.com

सार

सातवाहन शासन पश्चिमी भारत में मौर्यो राजनीतिक उत्तराधिकारियों के रूप में स्थापित हुआ। लगभग चार शताब्दियों की लम्बी समयावधि में (ई.पू. लगभग 200 वर्ष से लेकर ईस्वी 225 तक) उत्थान तथा पतन की अनेक स्थितियों में यह चलता रहा।पश्चिम भारत तथा दक्षिण-पूर्वी भागों में विदेशी व्यापार सातवाहनों नियंत्रण में था। नदियों तथा समुद्र तटों के द्वारा होने वाला व्यापार इन शासकों के नियंत्रण में होने के कारण सातवाहनों का राज्य बड़ा ऐश्वर्यशाली बना। उस समय के समाज में विभिन्न वर्ग भी सम्पन्न रूप में थे। समाज के इन विभिन्न वर्गों ने अनेक दान दिए फलस्वरूप मूर्ति कला का विकास हुआ। सातवाहन शासकों के शासन में जिन अनेक कलाकृतियों का सृजन हुआ वे मध्य भारत, पश्चिमी एवं दक्षिण-पूर्व भारत के अनेक क्षेत्रों तक फैली रही हैं। मध्य भारत में सातवाहन शासक शुंगों के राजनीतिक उत्तराधिकारी बने। मूर्ति निर्माण कला के उदाहरण इस काल की मूर्ति कला एवं स्थापत्य कला की वैभवता को प्रस्तुत करते हैं। उत्तर भारत में भरहुत, बोध गया, मथुरा, कौशांबी आदि विभिन्न केन्द्रों पर मूर्ति कला की आकर्षक परम्पराएं अस्तित्व में आ चुकी थीं। इस लेख में गुप्तकाल में मूर्ति निर्माण कला तथा अलंकरणों का स्वरूप का अध्ययन किया जाता है।

कीवर्डः गुप्तकाल, मूर्ति निर्माण कला, अलंकरणों

प्रस्तावना

गुप्त कालीन शासकों ने सुदृढ़ राजनीतिक शक्ति के आधार पर एक सुव्यवस्थित शासन की स्थापना की थी। इस विशेषता के कारण ही इस काल में सामाजिक शान्ति की स्थापना हुई, व्यापारिक प्रगति से संपन्नता आई तथा देशवासियों में राष्ट्रीय भावना का विकास हुआ। राजनीतिक स्थिरता तथा सामाजिक संपन्नता के कारण साहित्य, कला, धर्म, दर्शन तथा विज्ञान जैसे विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक संरचना और नए-नए कीर्तिमान, स्थापित हुए। इन्हीं शास्त्रीय विविधताओं के कारण तथा लावण्य गुप्तकाल शास्त्रीय युग भी माना जाता रहा है। वस्तुतः गुप्तकाल में प्रशासन, व्यापार, धर्म तथा साहित्य सृजन के अनुरूप ही कला के विविध क्षेत्रों में अद्भुत उन्नति हुई थी। इसीलिए इस युग को भारतीय इतिहास के स्वर्णिम युग की संज्ञा भी दी जाती है।

कला के विविध क्षेत्रों में गुप्तयुगीन शिल्पियों ने भारतीय में मूर्तियों को बनाने की कला के विकास को एक आयाम दिया। संरचना, शैली तथा भाव संबोध की दृष्टि से इस कालखण्ड की यह अपने समग्र रूप में भारतीय कला का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती है। कला के अभिप्रायों की दृष्टि से अनेक नवीन मान्यताएँ स्थापित होने के साथ-साथ राष्ट्रीय-भावना से गहराई से जुड़ी इस युग की कला पूर्ववर्ती एवं परवर्ती कालों की कला से पृथक अस्तित्व बनाने में सफल रही हैं। राष्ट्रीय अनुभूतियों, भावों तथाआदर्शों के अतिरिक्त धार्मिक तथा सांस्कृतिक संचेतना एवं आध्यात्मिक तत्वों की सफल संरक्षिका के रूप में गुप्त समय की कला विविध रूप से विकसित होकर पराकाष्ठा पर पहंुची। इस अर्थ में 'गुप्त-युग' पुनर्जीवन का नहीं बल्कि उत्कर्ष का कालखण्ड था।

इस युग में मूर्ति-कला के उत्कर्ष का प्रमुख कारण गुप्त शासकों द्वारा ब्राह्मण-धर्म को राजकीय संरक्षण दिया जाना था। सहिष्णुता के उच्चतम आदर्शों के कारण बौद्ध तथा जैन धर्म का विकास भी अबाध रूप में चलता रहा। अधिकांश गुप्त शासक ब्राह्मण मतावलम्बी थे। परन्तु समाज में ब्राह्मण-धर्म के व्यापक प्रचलन के साथ ही समाज का एक बड़ा वर्ग बौद्ध तथा जैन-धर्म में आस्था रखता था। उसके विकास में भी संलग्न रहा था। गुप्त अभिलेखों से इस तथ्य की पुष्टि होती है। गुप्त युग की भक्ति-धारा ने ब्राह्मण-धर्म के साथ-साथ बौद्ध तथा जैन धर्मों को भी अनुप्राणित किया। इन विविध धर्मो में अनेक सम्प्रदायों और मतों के अस्तित्व में आने के फलस्वरूप अनेकों देवी-देवताओं की कल्पनाएँ बनीं जिनका प्रयोग मूर्ति-निर्माण के प्रमुख विषय के रूप में किया गया।

भारत के विभिन्न भागों में व्यापक स्तर पर गुप्त शासकों के समय की कला का विकास हुआ। गुप्तों का काल राजनीतिक परिवर्तनों का परिच्छेद था। कला के विविध रूपों में आकर्षक रचनाऐं भी इस युग में हुई। भारत

के उत्तरी, पूर्वी, पश्चिमी तथा दक्षिणी क्षेत्रों में अधिक संख्या में मिली मूर्तियों की संरचना, शैली तथा भाव संवेगों के आधार पर पूर्ववर्ती कला से तुलना के साथ देखने पर गुप्त कालीन कला की मूलभूत विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं।

स्मिथ महोदय ने यह विचार व्यक्त किया था कि गुप्तों के समय में कलात्मक अभिवृद्धि भारत में विदेशी सभ्यता के सम्पर्क से ही थी। प्राचीन काल में इस बात में सन्देह नहीं कि सहस्त्रों वर्षो से भारत का व्यापारिक तथा सांस्कृतिक सम्बन्ध पश्चिम से रहा था। गुप्तकाल के पूर्व भी विदेशी कला के तत्वों तथा अनेक परम्पराओं ने भारतीय कला को प्रभावित किया। लेकिन इस सबके विपरीत गुप्त काल की मूर्ति-कला किसी विदेशी प्रभाव में विकसित नहीं हुई थी। यथार्थ में पूर्ववर्ती कला के विदेशी तत्वों को गुप्तों के समय के शिल्पी ने इस प्रकार से आत्मसात कर लिया था कि उनकी स्वतन्त्र स्थिति समाप्त सी प्रतीत होती है। इसके पूर्व कुुषाण काल में जिस गन्धार-कला क्षेत्र का विकास हुआ था उसकी शैली विदेशी थी। गुप्तों के समय की मूर्ति-कला भारतीयता के तत्वों से ओत-प्रोत रही। मथुरा की यद्यपि भारतीय मूर्ति कला शैली में भी कुषाणों के समय सूर्य-मूर्तियों को लम्बा पायजामा, बूट, तलवार आदि धारण किये हुए ईरानी प्रभाव से युक्त प्रदर्शित किया गया हैं। यह पूर्व की भारतीय कला परम्परा से सम्बन्धित नहीं था। किन्तु गुप्त युग में इन विदेशी तत्वों को अति सूक्ष्मता के साथ भारतीय कला में संजोकर अन्य भारतीय तत्वों के साथ समावेशित करके भारतीय रूप में प्रस्तुत किया गया। तदन्तर निर्मित मूर्तियों का भी मानदण्ड बढ़ा। कुषाणों के समय भारतीय कला के विविध रूपों में आत्मसात किया गया। विदेशी तत्वों को आकर्षक तथा कलात्मक ढंग से अनेक सज्जाओं के साथ प्रदर्शित करने का महत्व गुप्तों समय की शिल्पी की मौलिक प्रतिभा को ही हैं। उदाहरण के लिए देवत्व का आभास होने के लिये बुद्ध-मूर्ति में प्रभामण्डल का प्रदर्शन गन्धार क्षेत्र की कला शैली की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी। जिसे गुप्त-काल में गोलाकर तथा अण्डाकार रूपों में बेल-बूटों की नक्काशियों से अलंकृत करके आकर्षक रूप में प्रदर्शित करने का परम्परा इस युग में बढ़ी।

गुप्तों के समय की मूर्ति-कला की अन्य प्रमुख विषेशता यह थी कि देवी-देवताओं की मूर्तियों में आध्यात्मिक भावों में अभिव्यक्ति को महत्व दिया गया। मूर्तियों से आध्यात्मिक भाव सम्प्रेशित होता हैं। वस्तुतः इन मूर्तियों से ही धार्मिक उपासना को सरल रूप प्रस्तुत करना ही शिल्पी का ध्येय था। फलस्वरूप गुप्त काल की देव-मूर्तियों में आध्यात्मिक आभा तथा आन्तरिक शान्ति के तत्व व्याप्त हैं। मथुरा, सारनाथ तथा सुल्तानगंज से प्राप्त इस काल की बुद्ध-मूर्तियाँ मथुरा, सारनाथ तथा सुल्तानगंज से प्राप्त की गई बुद्ध-मूर्तियों में जिस शांति तथा सन्तुष्टि की दिखाई देती हैं, वह यह प्रामाणित करती है कि इसके रचनाकार का दृष्टिकोण आध्यात्मिक रहा। वह शरीर पर आत्मा की विजय प्रदर्शित करना चाहता था। सारनाथ की आकर्षक बुद्ध-मूर्ति में आध्यात्मिक अभिव्यक्ति, स्नेह मुस्कुराहट एवं गम्भीर भावपूर्ण मुद्रा इस काल की मूर्ति-कला की पराकाष्ण को सफलता सिद्ध करती है। आसन-मुद्रा की बुद्ध मूर्ति के मुखमण्डल पर कठोरअनुशासन के साथ स्नेह, करूणा, आत्मविश्वास एवं आध्यात्मिक सन्तोष के भाव दिखाई देते हैं।

इस रूप में सौन्दर्यता के उच्चतम शिखर पर निर्मित इन गुप्तयुगीन मूर्तियों में बाह्य तथा आन्तरिक सौन्दर्य को प्रस्तुत करने में शिल्पी के कौशल की उच्चता दिखाई देती है। मूर्तियों को सजाने तथा सँवारने का ओजपूर्ण प्रयास इस युग की कला की एक महत्वपूर्ण देन हैं। उदाहरण के लिए कुषाणयुगीन की मथुरा कला में मूर्तियों के सिर पर सुरूचिपूर्ण केश-सज्जा प्रदर्शित करने की परम्परा नहीं थी। परन्तु गुप्तकाल में शिल्पियों ने एक नया प्रयोग कर मूर्ति सौन्दर्य-रचना में अलंकरणों के प्रयोग में वृद्धि की। पुरूष-मूर्तियाँ में लटकते हुए कुंचित केशों को दिखाया गया है। नारी-मूर्तियों में अलक जाल धारण कर रखा है। शरीर पर धारण किये जाने वाले वस्त्रों को भी पारदर्शक रूप में इस रूप में दिखाया गया है कि उससे झलकते हुए शरीर के सुकोमल अंग-प्रत्यंग आकर्षक लगते हैं। इस काल की मूर्तियों में भाव बोध, रचना बनावट की सुघड़ता, सूक्ष्म वस्त्रों का प्रयोग तथा नपे-तुले वस्त्रों के प्रयोग के कारण अलंकारिक सौन्दर्य अद्भुत बन गई हैं।

गुप्तों के समय की मूर्ति-कला में एक सार्वभौमिक विशेषता दिखायी देती हैं। यद्यपि इनमें कुछ प्रादेशिक अन्तर भी रहे हैं। भारत के एक बड़े भू-भाग पर गुप्तों का शासन होने के कारण व्यापक स्तर पर मूर्तियाँ का निर्माण हुआ। भारत के विभिन्न भागों से प्राप्त मूर्तियों की संरचना तथाशैली को एक ही रूप में मानना

ऐतिहासिक दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता हैं। प्रादेशिक स्तर पर क्षेत्रीय निर्माण की शैलियों से मूर्तियों का प्रभावित होना स्वाभाविक ही था। निर्माण शैली में एकरूपता तथा विभिन्नता को स्पष्ट करते हुए समस्त मूर्तियों का क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित अध्ययन करना उचित होगा।

उत्तर-भारतीय मूर्ति निर्माण केन्द्रों में मथुरा तथा सारनाथ इस कला के केन्द्र रहे। मथुरा मूर्ति कला की उन्नति का सर्वोत्कृष्ट काल खण्ड कुषाणों का शासनकाल था। उस समय में मथुरा की लाल चित्तीदार बलुये पत्थर की बनाई गई विविध मूर्तियाँ देश के प्रत्येक क्षेत्र में जा रही थीं। गुप्तों के समय में भी मथुरा में मूर्तियों का सृजन होता रहा। गुप्तों के समय में मथुरा केन्द्र पर बनीं मूर्तियों में ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन धर्मों से सम्बन्धित मूर्तियाँ मिली हैं। किन्तु गुप्त युग की प्रारम्भिक मूर्तियों में साधारण विशेषताऐं ही हैं। इन मूर्तियों में गुप्त तथा कुषाणकालीन मूर्ति-कला का संयुक्त प्रभाव दृष्टिगत होता है। 129 गुप्त संवत् अर्थात 449-50 ई॰ में गुप्त सम्राट कुमारगुप्त के शासन में बनी ‘मनकुँवर की बुद्ध मूर्ति‘ कुषाणकाल की मथुरा-कला में बनी तीर्थंकर प्रतिमाओं का प्रत्यक्ष अनुकरण ही होता हैं।मूर्ति में शारीरिक अनुपात, वक्ष का गठन, मुख पर भाव तथा गोलाई का ढंग कुषाणकालीन मूर्तियों के समान ही है। परन्तु सिर के भाग पर दिखाया गया सपाट उष्णीय, यह बोध कराता है कि यह मूर्ति गुप्तों के समय शैली से प्रभावित है। मनकुँवर की बुद्ध-मूर्ति तथा सारनाथ की बुद्ध-मूर्ति में परस्पर गुप्तकाल के लक्षण प्रत्यक्ष रूप में आँकी जा सकते हैं। सारनाथ की बुद्ध-मूर्ति मनकुँवर की बुद्ध-मूर्ति की तुलना में अधिक प्रभावशाली ओजस्वी, भावमय तथा सहज तथा आकर्षक है। गुप्तकाल के आरम्भ मे मथुरा केन्द्र पर मूर्तियों का निर्माण कुषाण शैली में ही हुआ। तदन्तर मथुरा मूर्ति कला केन्द्र भी गुप्त शैली से प्रभावित हुआ।

मथुरा में बनाई गई गुप्तकाल की मूर्तियों की अपनी कुछ विशिष्टताएं हैं। कुषाणों के समय की मूर्तियों का प्रभामण्डल साधारण था। परन्तु गुप्तकाल में अलंकृत प्रभामण्डल की परम्परा आरम्भ हो गयी। दूसरी विशेषता बुद्ध के त्रिचीवर की बनावट है। यह परम्परा स्पष्ट कर देती है कि यह मूर्ति मथुरा में बनाई गई है। अन्तरवासक (अधोवस्त्र) कमर में बांधा गया है। संघाटी द्वारा दोनों कंधों को ढका गया है तथा घुटने के नीचे तक फैली है। कुशाणों के समय की मथुरा की मूर्तियों के दाहिने कन्धों पर संघाटी को नहीं दिखाया गया है। परन्तु गुप्तकाल में दोनों कन्धे से ढके हैं।

इन लक्षणों से युक्त मूर्तियों के साथ-साथ कुछ अन्य मूर्तियाँ भी बनाई गई हैं जिनमें कुषाण तथा गुप्त कला की मिश्रित विशेषताएँ दिखाईदेती हैं। इस क्रम में बोधगया से मिली बुद्ध-मूर्ति जो लाल पत्थर से बनी है। बनावट की दृष्टि से यह गुप्तों के समय मथुरा-कला केन्द्र में बनी मूर्ति है। इस मूर्ति की रचना शैली के बारे में जैसा वी.पी. सिंह ने लिखा है कि ‘‘इस मूर्ति का शरीर, तनी हुई आकृति आदि मथुरा शैली का प्रभाव दिखाते हैं। इस मूर्ति की अधखुली आँखें तथा मुख पर आध्यात्मिक आभा, होठों पर करूणामयी मुस्कान, गुप्तों के समय की मूर्ति बनाने की कला विशिष्ट देन ही हैं।‘‘ इस रूप में यह मूर्ति संक्रमण काल की लगती है। इस समय पर मथुरा तथा गुप्त मूर्ति कला में परस्पर रही थीं। बोधगथा की इस गुप्तों के समय मूर्ति में कुषाणों के समय की मूर्ति कला के शारीरिक लक्षण एवं गुप्तों के समय संयत सौन्दर्य तथा आन्तरिक आध्यात्मिकभाव पूर्णतः दिखाई देता है। किन्तु पाँचवी शती ई॰ के बाद बनी मूर्तियों में कुषाण मूर्ति कला दृढ़ता की तथा कडापन के स्थान पर मूर्तियों में शारीरिक की कोमलता, स्वाभाविक, सहजता तथा भावों की अभिव्यक्ति पूर्ण रूप से दिखाई देती है।

गुप्तों के समय मूर्ति-निर्माण का एक अन्य महत्वपूर्ण केन्द्र सारनाथ था। सारनाथ में बनाई गई मूर्तियों में अधिक संख्या बौद्ध-मूर्तियों की है। यथार्थ में सारनाथ केन्द्र पर बहुत पूर्व से ही एक बौद्ध मूर्ति कला केन्द्र के रूप में अपनी स्थापना कर ली थी। इसका मूल कारण यह था कि बुद्ध ने इस स्थान पर अपना पहला धर्मोपदेश प्रदान किया था। मूर्ति कला केन्द्र के रूप में यह मथुरा में बनी मूर्तियों की शैली के आरम्भ से पूर्व ही अस्तित्व में था। पूर्व में चुनार के बलुआ पत्थर से निर्मित अशोक के स्तम्भ तथा अन्य कलाकृतियों इसके साक्ष्य हैं।कुषाणों के समय में मथुरा में बनी मूर्तियों का निर्यात होने लगा था। परन्तु एक प्रमुख बौद्ध केन्द्र के रूप में गुप्तकाल में सारनाथ ने मूर्ति कला-शैली को संजोया वह तदन्तर मगध-वंग मूर्ति कला-शैली के स्वरूप निर्धारण का माध्यम भी बना।

मूर्तियों की शारीरिक संरचना, शैली तथा भावों का बोध सारनाथ में विकसित मूर्ति कला शैली की विशिष्टता थी। मथुरा शैली से इसका किसी प्रकार का सम्बन्ध स्पष्ट नहीं था। सारनाथ मूर्ति कला में बनीं मूर्तियाँ उत्कृष्ट सौन्दर्य तथा कुशल अभिव्यंजना की विशेषताओं से प्रभावशाली रही हैं। इन मूर्तियों में आध्यात्मिकता का भाव सफल रूप अंकन किया गया है।सारनाथ में विकसित मूर्ति कला शैली में बनी बुद्ध तथा बोधिसत्वों की मूर्तियों में शारीरिक अंगों की संरचना अद्भुत रूप में है। सुडौल तथा इकहरा शरीर इन मूर्तियों के घनत्व के बोझ से दबा नहीं है। शारीरिक बनावट में सुधार परिष्कार की दृष्टि से सारनाथ केन्द्र की मूर्तियाँ मथुरा मूर्तियों से भी श्रेष्ठ रही हैं। मथुरा में बनी मूर्तियों में शरीर का भारीपन लक्षण सारनाथ में विकसित मूर्ति कला शैली में समाप्त कर दिया गया था।

अंग-प्रत्यंगों को सुरूचिपूर्ण एवं भाव प्रदर्षित करने का प्रयास किया गया। सारनाथ मूर्ति निर्माण शैली में बनी मूर्तियों में मुखमण्डल पर कोमलता का भाव है। चेहरे को कुछ लम्बा दिखाया गया है। शारीरिक संरचना इस रूप में बुद्ध-मूर्तियांे के भावों के सदैव अनुकूल ही थीं। सारनाथ में निर्मित बुद्ध-मूर्तियों में शान्त भाव को शिल्पी का अभीष्ट ध्येय दिखाई देता है। इस तथ्य का कारण यही रहा कि सारनाथ में बुद्ध तथा बोधिसत्वों की मूर्तियाँ अधिक संख्या में बनाई गई। इनमें सदैव शान्तरस के भाव को प्रस्तुत करना ही बौद्ध धर्म की भावना के अनुकूल था। सारनाथ की मूर्तियों में वस्त्र-संरचना भी मथुरा मूर्ति कला की अपेक्षा कुछ नवीन लक्षणों के रूप प्रदर्शित हुई है। मथुरा में बनी मूर्तियों में वस्त्रों की चुन्नटें सारनाथ शैली में समाप्त कर दी गई।

सारनाथ में विकसित मूर्ति कला शैली में बनी अनेक मूर्तियाँ शिल्प के दृष्टिकोण से उत्कृष्ट रहीं हैं। गुप्त काल में सारनाथ केन्द्र पर सुन्दर तथा सौम्य मूर्तियाँ में बुद्ध-मूर्तियों का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। धर्म-चक्र-प्रवर्तन की मुद्रा में बनी मूर्ति के मुखमण्डल पर असीम शान्ति, दिव्यता का बोध, कोमलता तथा गम्भीरता का भाव है। अंग-प्रत्यंग को सुकुमारता तथा सौन्दर्य के साथ इहलौकिकता से सम्बद्ध किया गया है।सारनाथ केन्द्र की परिष्कृत मूर्ति निर्माण कला-शैली की परम्परा आगे चलकर धीरे-धीरे क्षीर्ण होती गई। इसकी शिल्प-परम्परा का निग्दर्शनविशेष तथा बौद्ध-मूर्तियों तक ही सीमित रहा। तदन्तर निर्मित होने वाली ब्राह्मण-मूर्तियों में तो सारनाथ के तत्वों का प्रयोग नहीं किया गया। उदाहरण के लिए पाँचवी शती ई॰ में बनाई गई एरण की वराह-मूर्ति में घनत्व के भार तथा रेखाओं के प्रयाग का क्षीर्ण प्रवाह वन्य पशुओं की शारीरिक संरचना निर्माण में भारीपन का बोध कराता है। वराह के साथ-साथ नारी-रूप में प्रदर्शित पृथ्वी की आकृति में भी नारी के शरीर की कोमलता तथा अंग-प्रत्यंगों की आकर्षक शोभा अर्थात नारी-काया को भी प्रस्तुत नहीं किया गया हैं।

गुप्तों के समय मूर्ति निर्माण कला-केन्द्रों में पाटलिपुत्र की भी गणना होती रही है। पाटिलपुत्र केन्द्र में प्रायः धातु-मूर्तियाँ बनाई गई थीं। कम संख्या में प्रस्तर मूतियाँ बनाई गईं। नालन्दा के प्राप्त धातु-मूर्तियों तथा सारनाथ की मूर्तियों की सरंचना तथा शैली गत लक्षणों में काफी सीमा तक समानता दिखाई देती है। पाटलिपुत्र शैली में बनी मूर्तियों की विकृत केश, सीधी भौंहें तथा उष्णीव का प्रस्तुतीकरण अंकन दिखाई देता है। पाटलिपुत्र केन्द्र पर बनी मूर्तियों का महत्व रहा है। मौर्यकाल में पाटलिपुत्र में मूर्तिकला की अपनी कोई विशिष्ट शैली नहीं थी। मौर्यकाल के बाद पाटिलपुत्र से लाल पत्थर से बनीं मूर्तियों को मथुरा से लाया गया प्रतीत होता है। गुप्तकाल में पाटिलपुत्र की लाल पत्थर से बनी मूर्तियाँ बहुत कम संख्या में मिली हैं। विशेष रूप में मगध क्षेत्र से पाटलिपुत्र मूर्ति निर्माण में बनी मूर्तियों में सुल्तानगंज (भागलपुर) के समीप से मिली तांबे की बनी विशाल बुद्ध-मूर्ति का स्थान प्रमुख रहा हैं। शान्तिभाव से मुस्कान, करूणा का बोध, तथा आध्यात्मिक आभा से युक्त साढ़े सात फीट ऊँची बुद्ध की यह ढली हुई मूर्ति बर्मिंघम संग्रहालय, लंदन मंे प्रदर्शित की गईं। इस मूर्ति के आध्यात्मिक भावों को सरल तथा सहजता से प्रस्तुत किया गया है। उससे शिल्पियों के आध्यात्मिक भावों की भारतीय कल्पना की परम्परा बोध होता है। सुल्तानगंज में बनी इस ताम्र-मूर्ति तथा सारनाथ की बुद्ध-मूर्ति की बनावट की शैली में भी काफी सीमा तक एकता दिखाई देती हैं। सारनाथ की इस मूर्ति की तुलना में सुल्तानगंज की बुद्ध की मूर्ति में गम्भीर भावों कुछ का बोध अधिक है।

गुप्तकाल में गंगा-यमुना का दोआब क्षेत्र मध्यप्रदेश का भाग तथा मालवा में भी मूर्ति निर्माण किया जाता रहा। गुप्तों के समय मूर्तिकला की परम्परा ने कुछ सीमा तक प्रभाव डाला। उदाहरण के लिए भारत कला भवन, वाराणसी की कार्तिकेय-मूर्ति, सारनाथ के संग्रहालय में प्रदर्शित लोकेश्वर की मूर्ति, मध्यप्रदेश में प्राप्त एक मुखलिंग, ग्वालियर संग्रहालय में प्रदर्शित कुछ मूर्तियाँ सारनाथ मूर्ति के अत्यन्त निकट रही हैं।

लेकिनइन मूर्तियों में आध्यात्मिक आभा का अभाव दिखाई देता है। इनकी शारीरिक संरचना भी सारनाथ मूर्तियों जैसी सुकुमार नहीं हैं। इन मूर्तियों में भारीपन है। उदाहरण के लिए देवगढ़ की मध्य प्रदेश में प्रसिद्ध मूर्तियों के शिल्प के बारे में यह प्रमाणित होता है। साथ ही मध्य प्रदेश के इस क्षेत्र में पारम्परिक लोक-कलाओं का भी प्रभाव देखा जा सकता है। कोसम (कौशाम्बी) से मिली शिव-पार्वती की मूर्ति, इलाहाबाद संग्रहालय में प्रदर्शित रामायण के दृश्यपट, गुप्त-शिल्प से अलग ही हैं। इनमें शारीरिक सौष्ठव तथा आध्यात्मिक भावों का अभाव है। लेकिन मालवा की मूर्तिकला में नवीन तत्वों का प्रभाव परिलक्षित होता है। परन्तु साँची की प्राचीन परम्पराओं का भी प्रभाव रहा। उदयगिरि, मंदसौर, भिल्सा आदि से प्राप्त अधिकांश मूर्तियों में भव्यता तथा भारीपन दिखाई देता है। जैसे उदयगिरि की विशाल वराह-मूर्तिका शिल्प से गुप्तों के समय शिल्प का प्रतिरूप है। इसमें गुप्तों के समय में मध्यप्रदेश के विविध शिल्पों की विशेषताएँ दिखाई देती हैं। परन्तु सौन्दर्य तथा भावों के प्रस्तुतीकरण में यह मूर्ति गुप्तों के समय आदर्शों से सर्वथा भिन्न है। मूर्ति कला में नारी के रूप में वराह द्वारा पृथ्वी को कन्धों पर उठाया गया है। शरीर की शक्ति तथा प्रभाव का सम्मिश्रण हुआ है। पृथ्वी की आकृति में नारी-शरीर की सरलता तथाकोमलता का अभाव है।यह मूर्ति छठी से आठवाँ शताब्दी में बनी हुई बादामी, एलोरा और एलिफेन्टा से पूर्व की कही जा सकती है।

भारत के पूर्वी भाग में सारनाथ की कोमलता तथा आध्यात्मिक आभा के रूप में भावनाओं का सम्प्रेषण हुआ है। बिहार में सुल्तानगंज से प्राप्त बुद्ध-मूर्ति, राजगिरि के निकट मनियार मठ की मूतियाँ, तेजपुर के निकट प्राप्त हुई दहपरबतिया में गंगा-युमना की अन्य मूर्तियाँ। क्षेत्रीय कला के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं। इन मूर्तियों की शारीरिक रचना सारनाथ कला से प्रभावित है। साथ ही साथ भावनाओं को अभिव्यक्ति किया गया है।

उपसंहार

हमारी मूर्तिकला, जिसमें हमारी युग-युग को संस्कृति औरआध्यात्मिकता के संदेश भरे पड़े है और जो संसार के हजारों कोसमें फैली हुई है, आज हमारी उपेक्षा की वस्तु हो रही है। हमाराकर्तव्य है कि हम उसे समझें, उसका संरक्षण करें और उसे पुर्नजीवित करें। भारत और बृहत्तर भारत के योजन-योजन पर ऐसेस्थान है जहाँ इस प्रकार की निधियों भरी पड़ी है। क्या हमउनका उद्घाटन उन उन क्षेत्रों की सरकारों पर छोड़ दें। यहतो हमारा दायित्व है। सरकारें हमारी यही मदद कर सकती हैंकि हमें अधिक से अधिक सुविधा प्रदान करें और निकली हुई चीजों की रखवाली का प्रबंध करे।

संदर्भ

मजूमदार, आर.सी. (अनुवादक), द एज़ आॅफ इम्पीरियल यूनिटी, बोम्बे, 1956
शिवराममूर्ति, सी., अमरावतीस्कल्पचर्स1942, मद्रास
सिंह, एस.बी., ब्राह्मणिकल, आईकन इन नाॅर्थन इंडिया, नई दिल्ली, 1977
तिवारी, एस.पी., हिन्दू आईक्रोनोलाॅजी, नई दिल्ली, 1979
हटर्ल, हरबर्ट, सम रिजल्टस आॅफ एक्स्केवेशन्स ऐट सौंख, जर्मन स्कालर्स आन इण्डिया, नई दिल्ली, 1976
पाण्डेय नेत्र, भारत का सरल इतिहास, स्वास्तिक प्रकाशन, एलनगंज, इलाहाबाद, 1973
पाटकर, प्रसन्न, प्राचीन भारतीय कला में अलंकरण, आगरा, 1967
श्री वृंदावन भट्टाचार्य एम० ए० कृत, इंडियन इमेजेज (भारत कलाभवन, काशी), प्रस्तावना
श्रीवास्तव, ए.एल., भारतीय कला, इलाहाबाद, 2002
श्रीवास्तव, ए.एल., भारतीयकला, किताबमहल, दिल्ली, 1988
श्रीवास्तव, ब्रजभूषण,प्राचीनभारतीय प्रतिमाविज्ञानएवंमूर्तिकला, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2010, वाराणसी